पूज्य श्री जयमल्लजी म० की दो सौ चौसठवीं जन्म-जयंती
के उपलक्ष्य में प्रकाशित

ज्योतिर्धर जय

आशीर्वचन
उपाध्याय श्री अमरमुनि

लेखक :
श्री मधुकर मुनि

संपादक :
श्रीचन्द सुराना 'सरस'

प्रकाशक :
मुनि श्री हजारीमल स्मृति प्रकाशन
ब्यावर

पुस्तक :
ज्योतिर्धर जय

प्रकाशक :
मुनि श्री हजारीमल स्मृति प्रकाशन समिति
पीपलिया बाजार, ब्यावर

द्रव्य सहयोग :
एक धर्मानुरागी सद्गृहस्थ : जयपुर

मूल्य :
पचास पैसे (मात्र सदुपयोग के लिए)

मुद्रक :
प्रेम प्रिंटिंग प्रेस
अहीर पाड़ा, आगरा-२

आशीर्वचन

भारतीय सस्कृति सतो की सस्कृति रही है। संत का जीवन ज्ञान, कर्म एवं भक्ति का पावन सगम है, जिसे भारतीय जन-जीवन एक पवित्र तीर्थ के रूप मे मानता है। भारतीय जन-चेतना इसीलिए सत की पूजा करती है, चूकि वह उसके पवित्र आदर्शों का प्रतीक है, उसकी समस्त श्रद्धा का केन्द्र है। संत भारतीय चिन्तन एव धर्म की अखण्ड ज्योति है।

अठारहवी शताब्दी में एक ऐसे ही ज्योतिर्मय तप.पूत सत के अवतरण से राजस्थान का अचल जगमगा उठा था। जिसकी पवित्र ज्ञानरश्मियो से सर्वत्र एक आलोक बिखर गया था और जिसके मधुर जीवन सगीत की स्वर लहरियों से सुप्त जन-चेतना अँगड़ाई भर जगने लगी थी। राजस्थान के वह वीरव्रती तपोधन सत थे आचार्य श्री जयमल्ल जी।

आचार्य श्री जयमल्ल जी बहुमुखी व्यक्तित्व के धनी थे। ज्ञानगरिमा, चारित्रिक महिमा और काव्य मधुरिमा के सुसयोग से उनकी जीवन आभा चन्द्र सी शीतल, निर्मल व प्रकाशमय थी। वे स्थानकवासी परम्परा के एक महान् प्रभावशाली आचार्य थे।

मेरे चिर स्नेही श्री मधुकर मुनि जी ने उन महान आचार्य श्री की जीवन रेखाओं को शब्दायित कर जिस ऐतिहासिक गौरव को पुनरुज्जीवित किया है वह अभिनन्दनीय है।

इस साधु प्रयास के लिए मेरी शतशः शुभ कामनाएँ।

जैनभवन
लोहामण्डी, आगरा। —उपाध्याय अमरमुनि

o

प्रकाशक की ओर से

श्रमण संघीय उप प्रवर्तक स्वामीजी श्री ब्रजलालजी महाराज, पंडित रत्न श्री मधुकर मुनिजी महाराज तथा सेवाभावी श्री नवीन मुनिजी महाराज के सान्निध्य में भाद्रपद शुक्ला त्रयोदशी को राजस्थान की राजधानी गुलाबीनगर जयपुर में वर्धमान स्थानकवासी जैन श्रावक संघ, जयपुर की ओर से स्वर्गीय आचार्य श्री जयमलजी महाराज की २६४ वीं जन्म-जयन्ती समारोह के साथ मनाई जा रही है। यह एक बड़ी प्रसन्नता की बात है।

इस शुभ अवसर पर 'ज्योतिर्धर जय' का प्रकाशन भी सोने में सुगन्ध है? हमारे लिए यह भी एक सौभाग्य की बात है कि प्रस्तुत पुस्तिका का प्रकाशन 'मुनिश्री हजारीमल स्मृति प्रकाशन' ब्यावर से हो रहा है।

प्रस्तुत पुस्तिका के लेखक हैं पूज्य गुरुदेव पंडित रत्न श्री मधुकर मुनि जी महाराज, और संपादक हैं श्री श्रीचन्द जी सुराना 'सरस'।

पूज्य गुरुदेव व 'सरस' जी का यह प्रयास अतीव सफल व सहराजीय रहा है, ऐसा मेरा अभिमत है। पाठक गण भी इसे पसंद करेंगे ऐसा सुदृढ़ विश्वास है।

कविरत्न श्रद्धेय उपाध्याय श्री अमरचन्द्र जी म० ने आशीर्वचन के रूप में हमारे पर जो अनुग्रह किया है, उसके लिए मैं सविनय श्रद्धानत हूँ।

जयपुर के एक धर्मप्रेमी सद्गृहस्थ महोदय ने अपना नाम प्रकट न करके भी प्रकाशन में अर्थ सहयोग दिया है।

मैं पूज्य गुरुदेवो का, तथा सपादक जी व अर्थ सहयोगी बधुवर का पूर्ण आभार मानता हूँ।

आचार्य श्री जयमल्ल जी महाराज के परम पावन इस जयन्ती-समारोह के शुभ अवसर पर 'ज्योतिर्धर जय' को पाठकों के करकमलो मे समर्पित कर मैं अपने को धन्य भाग्य मानता हूँ।

सुगनचन्द कोठारी
मत्री
मुनिश्री हजारीमल स्मृति प्रकाशन
ब्यावर

ब्यावर
३१-८-७०

स्वतः

प्रस्तुत पुस्तिका का नाम 'ज्योतिर्धर जय' है। इस पुस्तक में स्वर्गीय आचार्य श्री जयमल्ल जी महाराज का जीवन-इतिवृत्त अंकित है।

पूज्य प्रवर श्री जयमल्ल जी महाराज अपने समय के एक महान अनुशास्ता थे। उनका समग्र जीवन त्याग-वैराग्य और संयम साधना से समत संपृक्त था।

उनके बहुमुखी व्यक्तित्व और कृतित्व का अंकन इस लघुतम पुस्तिका में यद्यपि नहीं हो सकता, फिर भी इनके जीवन की मूल-भूत घटनाओं का आलेखन तथा उनके कृतित्व पक्ष का संक्षिप्त संसूचन इसमें साव-धानी के साथ किया गया है।

आचार्य श्री के परवर्ती आचार्यों के तथा उनके संप्रदाय के कुछ विशिष्ट संतों के जीवन का दिग्दर्शन भी प्रस्तुत पुस्तिका में संक्षिप्ततया किया गया है।

आचार्य श्री जी के सम्प्रदाय में शतश. साधना-शील संत व संयमशीला साध्वियाँ हुई हैं। आज भी इनके सम्प्रदाय की साधु-साध्वियों का बहुत अच्छा वर्चस्व है समाज में। उनके जीवन की गुण-गरिम-गाथाओं को भी समाज के सन्मुख लाने की एक अपेक्षा है। इस ओर भी मेरा प्रयास है। आशा है, इस प्रयास में भी मुझे अवश्य सफलता मिलेगी।

यह पुस्तिका पाठकों के कर-कमलों में पहुँच रही है। यदि पाठकों ने इसे पसन्द किया तो मैं अपने प्रयास को सफल समझूँगा—इसी आशा के साथ, विराम !

लाल भवन,
जयपुर
दिनांक २/६/७०

मधुकर मुनि

संस्कृति का आरोह : अवरोह | १

भारतीय संस्कृति की दो पवित्र धाराएं अनादि अनंत काल से सतत प्रवहमान रही हैं। धारा का एक प्रवाह जीवन की बाह्य सुविधा, सम्पन्नता एवं समृद्धि को प्रोत्साहित करने में अग्रसर रहा है, तो दूसरा एक प्रवाह जीवन की अन्तरंग पवित्रता, आत्मगुणों का विकास एवं आत्मलीनता पर विशेष बल देता आया है। प्रथम प्रवाह—संस्कृति का एक रूप है, जिसे 'वैदिक संस्कृति' के नाम से पुकारा गया, और दूसरे प्रवाह को 'श्रमण संस्कृति' के नाम से जाना गया है।

श्रमण संस्कृति का मूल ध्रुव—आत्म-चेतना है। प्राणिमात्र के अन्दर एक चिन्मय ज्योति छिपी हुई है। चाहे कीड़ी है, या कुंजर! पशु है या मानव! नरक का

कोई तुच्छ कीड़ा है, या स्वर्ग का अधीश्वर—देवराज ! सब में भीतर एक अखण्ड ज्योति—जिसे आत्मज्योति कहा गया है, वह जगमगा रही है। यह बात दूसरी है कि किसी ने उसका बहुविध विकास कर उसके आलोक से स्व एवं पर को आलोकित किया है, और किसी में वह ज्योति राख में दबी अग्नि की भांति गुप्त हो रही है।

श्रमणसंस्कृति ने आत्म-विकास का मार्ग प्रशस्त किया है। आत्मा की अन्तरंग पवित्रता, निर्मलता के साथ-साथ उसके स्व-गुणों का विकास करने में श्रमण संस्कृति ने उदात्त चिन्तन-दर्शन प्रस्तुत किया है। आत्मा की अनन्त ज्ञान-शक्तियां, अनन्त विभूतियां एवं अनन्त-सुखमय-स्वरूप दशा के विकास में वह सतत जागरूक ही नहीं, प्रयत्नशील भी रही है। आत्म-गुणों का परम विकास ही श्रमण-संस्कृति का मूल ध्रुव है। इसी ध्रुव की अटल साधना में भगवान ऋषभदेव से लेकर श्रमण भगवान महावीर तक असंख्य साधकों की परम्परा सतत गतिशील रही है। "पणया वीरा महावीहिं"—असंख्य-असंख्य वीर, महावीर, आत्म-साधक तपस्वी इस पथ पर चरण बढ़ाते रहे हैं, आत्मजागरण एवं आत्मविकास के

चरम लक्ष्य तक पहुँचते रहे हैं और आने वाले साधकों के लिए आलोक-किरणें छोड़ते गये हैं !

इतिहासकारों का मत है—भगवान महावीर का युग श्रमणसंस्कृति का 'स्वर्ण युग' रहा है। इस युग में श्रमणसंस्कृति अपने चरम उत्कर्ष तक पहुँची है। हजारों-हजार साधकों एवं आत्म-शोधकों की टोलियां, जीवन के बाह्य एवं अन्तरंग—दोनों पक्षों को उजागर करती हुई, आत्मकल्याण से जनकल्याण तक के मार्ग पर अस्खलित गति से बढ़ती रही है। काल-प्रवाह से श्रमण संस्कृति में जो कुछ अस्त-व्यस्तता आगई थी, वह भी भगवान महावीर की क्रांत—जीवन दृष्टि से दूर हुई, और युग विचार को नया चिन्तन, नया दर्शन मिला।

चिन्तन एवं दर्शन के क्षेत्र में, साधना एवं सामान्य व्यवहार की दिशा में भगवान महावीर ने क्रांति की जिस धारा को वेग दिया था, जिस अवरुद्ध प्रवाह को नया मोड़ देकर गतिशील बनाया था, वह उनके परि-निर्वाण के पश्चात् क्रमशः पुनः क्षीण एवं अवरुद्ध होता गया। जिन धार्मिक अंधविश्वासों एवं वैचारिक जड़-

ताओं को भगवान महावीर ने झकझोर कर शुद्ध आत्म-वादी एवं प्रज्ञा पुरस्सर जीवन दृष्टि का दान किया, वह क्रमशः लुप्त होने लगी थी। क्रांति के नाम पर जड़ता और पाखण्ड की श्याम चादर फैलने लग गई थी! अनन्त आध्यात्मिक तेज से युक्त श्रमण संस्कृति का, उसके अनु-यायियों द्वारा ही तेजोवध होने लग गया और एक प्रकार से सांस्कृतिक अवरोह का युग प्रारम्भ हो गया था।



क्रांतिकारी मोड़ | २

पच्चीस सौ वर्ष का इतिहास साक्षी है कि जैन धर्म के अन्तरमुखीन उदात्त विचारों पर जब-जब जड़ता एवं पाखण्ड हावी होकर उसके तेज को क्षीण करने लगे हैं, तब-तब युग में ऐसे तपस्वी ज्योतिर्धर संत एवं मनस्वी पैदा हुए हैं जो अपने प्राणों की आहुति देकर भी इस ज्योति को, इस अक्षय तेज को प्रखर से प्रखरतम करते रहे हैं। और भगवान महावीर के उज्ज्वल आदर्शों पर अखण्ड जीवट के साथ बढ़ते गये हैं।

भारतीय इतिहास की सोलहवीं शताब्दी धार्मिक जागरण एवं वैचारिक उद्बोधन की दृष्टि से क्रांतिकारी शताब्दी कही जा सकती है। भक्ति एवं साधना के क्षेत्र में इस शताब्दी ने अनेक क्रांतिकारी मोड़ लिए हैं। श्रमण परम्परा में ही नहीं, वैदिक परम्परा में भी इस

शताब्दी में निर्गुण उपासना, धार्मिक उदारता एवं धर्म पर छाए आडम्बरों के निराकरण की दिशा में अनेक क्रांतिकारी घटनाएं घटित हुई हैं।

धर्मप्राण लोकाशाह इसी क्रांतिकारी शताब्दी की एक महत्वपूर्ण उपलब्धि है।

श्रमण संस्कृति की जिस स्थानकवासी परम्परा ने एक क्रांतिकारी परम्परा के रूप में विकास किया, साधना, भक्ति एवं उपासना के क्षेत्र में जिस ऐतिहासिक सुधार एवं आत्मनिष्ठ दृष्टि को विस्तार दिया—उसका जन्म भी इसी शताब्दी में हुआ। इन क्रांतिकारी एवं तेजस्वी विचारों के जन्मदाता थे धर्मप्राण लोकाशाह !

युग के धर्म-समीक्षकों का मत है कि आज के युग में जहाँ हजारों प्रकार के धार्मिक विचार, एवं हजारों प्रकार की धार्मिक साधनाएं चल रही हैं, वहाँ स्थानकवासी धर्मविचार एवं धार्मिक साधनापद्धति बहुत ही परिष्कृत, परिमार्जित, आडम्बररहित एवं भगवान महावीर के आदर्शों की सच्ची प्रतिनिधि कही जा सकती है। इसकी उपासनाविधि चैतन्य की उपासना से आज भी सचेतन है, इसकी साधनाओं में आज भी महावीर

की साधना का तेज झलक रहा है। जीव और जगत के प्रति समत्वदृष्टि, आत्मवादी चिन्तन, आडम्बर रहित साधना एवं आत्मनिष्ठा के साथ लोक कल्याण की विशुद्ध भावना स्थानकवासी धर्म साधना की अपनी मूल विशेषता है और इन विशेषताओं का पुनः प्रस्फुटन इसी सोलहवीं शताब्दी के धर्मवीर लोंकाशाह की ऊर्जस्विन चिन्तन भूमि में हुआ।

लोंकाशाह अपने युग के क्रांतिकारी धर्म सुधारक थे। सत्य के निर्भीक खोजी एवं प्रवक्ता थे। जैन धर्म के उच्च आदर्शों, पवित्र साधना पद्धतियों एवं चैतन्य-पूजक जीवन विचारों का दर्शन जिस सूक्ष्मता के साथ लोंकाशाह ने प्रस्तुत किया, वह केवल स्थानकवासी परम्परा के लिए ही नहीं, अपितु भारतीय धर्म परम्पराओं के लिए भी एक गौरव पूर्ण घटना है।

लोंकाशाह की विचार जागृति एवं धर्मक्रांति को मूर्तरूप देने वाले स्थानकवासी परम्परा के आदि पुरुष थे—श्री धर्मदास जी महाराज। श्री धर्मदास जी म० अपने युग के समर्थ विद्वान्, क्रियोद्धारक एवं तेजस्वी धर्म प्रचारक संत थे। वि० स० १७७२ में आपका स्वर्गवास हुआ।

आचार्य श्री धर्मदास जी महाराज के तीसरे पट्ट पर आचार्य श्री भूधर जी महाराज का नाम बड़े गौरव के साथ लिया जाता है। वे बड़े निर्भीक, तेजस्वी एवं कठोर साधक थे। गृहस्थ जीवन में वे जोधपुर के महाराज अजीतसिंह जी के फौजी अफसर थे। उनका साहस और समझदारी राजदरबार में उल्लेखनीय माना जाता था। जब वे संसार से विरक्त हो आचार्य श्री धनराजजी महाराज के पास दीक्षित हुए तो, अनेक लोगों को आश्चर्य हुआ कि एक वीर फौजी अफसर जैन धर्म का अहिंसाव्रती मुनि बन रहा है। इससे जनता पर जैनधर्म के त्याग एवं वैराग्य के अच्छे संस्कार जगे। वास्तव में जैन धर्म तो वीरों का ही धर्म है।

आचार्य श्री भूधर जी महाराज के शिष्यों में कुछ शिष्य बड़े ही मेधावी, तेजस्वी एवं चारित्रसंपन्न थे। पूज्य रघुनाथजी महाराज, पूज्य श्री जयमल्लजी महाराज तथा पूज्य श्री कुशलोजी महाराज आदि का नाम आज भी बड़ी श्रद्धा एवं गौरव के साथ लिया जाता है। वस्तुत: अठारहवीं शताब्दी का उत्तरार्ध एवं उन्नीसवीं शताब्दी का आदि काल स्थानकवासी परम्परा का उत्कर्ष काल कहा जा सकता है। इस समय में अनेक

प्रभावशाली आचार्य, तथा प्रतिभासंपन्न संतो का उदय हुआ है। जिन्होंने अपने आत्मतेज, साहस श्रुतबल एवं कठोर साधना के द्वारा न केवल जैन धर्म का गौरव बढाया है, किंतु साधु, साध्वी, श्रावक, श्राविका आदि तीर्थ की दृष्टि से उसका विकास-विस्तार भी किया है। जैन शासन की बहुमुखी समृद्धि इन शताब्दियों में हुई है। संघीय दृष्टि से भी, साहित्य एवं कला की दृष्टि से भी, तथा श्रावक समाज के राजकीय एवं आर्थिक प्रभाव की दृष्टि से भी। कहना चाहिए लगभग बाईस सौ वर्ष के बाद फिर से श्रमण संस्कृति का उत्कर्ष काल आया, जिसमें चारित्र, ज्ञान एवं प्रभाविकता की दृष्टि से एक साथ चतुर्मुखी उन्नति के द्वार खुल पड़े।



बहुमुखी व्यक्तित्व के धनी पूज्य श्री जयमल्लजी म० | ३

आचार्य श्री भूधर जी म० की प्रभाविक शिष्य परंपरा में आज भी अनेक तेजस्वी, विद्वान, प्रतिभा संपन्न एवं चारित्रनिष्ठ संत हैं, जिनसे स्थानकवासी परम्परा के गौरव में चार चांद लग रहे हैं। इस परम्परा के विशिष्ट संतो का परिचय अगले पृष्ठों पर दिया जा रहा है। यहाँ हम पूज्य श्री जयमल्ल जी म० के व्यक्तित्व की विरल झांकी प्रस्तुत कर रहे है।

आचार्य श्री जयमल्ल जी म० का व्यक्तित्व बहुमुखी था। उनका हृदय नवनीत-सा कोमल, फूलों-सा सौरभ-मय एव द्राक्ष-सा मधुर था। उनका मन आकाश से गिरती जलधारा के समान स्वच्छ एवं सरल था, स्वभाव मिलनसार, वाणी ओजस्वी एव प्रभावशाली थी। उनके निर्मल अन्त.करण में करुणा की शीतल लहरें

प्रतिक्षण तरंगित होती रहती। क्रूर एवं कठोर हृदय वाले भी उनके सम्पर्क में आकर करुणाशील एवं श्रद्धालु बन जाते थे। कष्टों को हँसते-हँसते सहन करने की अद्‌भुत सहिष्णुता उनके जीवन का महान् गुण था। बाधाओं और प्रतिकूल परिस्थितियों में भी वे 'मेरुव्व वाएण अकंपमाणो—मेरु की तरह सदा अडोल और अविचल रहे। अपमान एवं उद्‌विग्नता के क्षणों में भी उनका मुख कमल शतदल की भाँति सदा खिलता हुआ देखा जाता। उनका हृदय जितना करुणाशील था, पर-दुःख देखकर बर्फ की तरह पिघलने वाला था, उतना ही अपने संकल्पों में कठोर, वज्र से भी अधिक दृढ, चट्टान से भी अधिक अडिग और सत्य के प्रति अविचल आस्था लिए हुए था। उनके हृदय में सागर-सी गम्भीरता, आकाश-सी विशालता थी। उनकी वाणी में ओज एवं प्रभाव था, उनकी कविताओं में माधुर्य छलकता था, जो जादू की तरह श्रोताओं के मन-मस्तिष्क को शीघ्र प्रभावित कर देता था। एक महापुरुष-सी धीरता, गम्भीरता, एक संत-सी निस्पृहता एक विद्वान-सी मनस्विता, एक तपोधन-सी प्रखर निष्ठा, परम साधक-सी सतत जागरूकता और औलिया फकीर-सी फक्कड़ता—

उनके जीवन के बहुरंगी चित्र हैं, जो उनकी जीवन घटनाओ से सपृक्त आज भी आकर्षण के केन्द्र बने हुए हैं। एक सत, तपस्वी, प्रशासक, प्रचारक, कवि तथा जननेता के विविध रम्य रूप उनके जीवन की चादर में इस प्रकार भरे हुए हैं, जिसे उलटने से लगता है राजस्थानी वीर रमणी का सतरंगी लहरिया हवा में लहर-लहर लहरा रहा हो।

उनके दिव्य जीवन की उज्ज्वल प्रेरणाओ का एक छोटा-सा रेखांकन हम अगले पृष्ठों पर अंकित कर रहे हैं, जो उनकी पुनीत स्मृतियो के साथ दिव्य प्रेरणाओं से जन-जन के हृदय को श्रद्धा विभोर कर रहा है। •

सरसता - चुंबिता-सरितापति
मधुरता-मृदुता गुणसततिः।
मनन - वाचन-सस्कृत वाङ्‌मयः
जयतु पूज्यवरो भुवने जयः॥



४

वज्र संकल्प के धनी

पूज्य श्री जयमलजी म० का जन्म आज से दो सौ तिरसठ वर्ष पूर्व वि० सं० १७६५ भादवा सुदी १३ को हुआ। आपके जन्म से रत्नगर्भा मरुधरा ने अपना नाम सार्थक पाया। जोधपुर राज्य के अन्तर्गत मेड़ता से जैतारण को जाने वाले मार्ग पर 'लांबिया' गाँव है। वहाँ श्री मोहनलाल जी मेहता (समदड़िया) के घर पर पूज्य श्री जयमल्ल जी का अवतरण हुआ। आपकी माता श्री महिमादेवी थी, जो आप जैसे सत्पुत्र को जन्म देकर वास्तव में ही महिमावती पद को शोभित करने लगी। आपके एक बड़े भाई भी थे जिनका नाम रिड़मलजी था।

स्वभाव



श्रीजयमल्ल जी में बचपन से ही व्यापारिक प्रतिभा, तथा व्यवहार कुशलता अच्छी थी। उनके पिता

कामदार थे, इस लिए जयमल्लजी का परिचय एवं संपर्क क्षेत्र काफी विस्तृत एवं ऊँचे तबके के साथ रहता था। व्यवहार की बातों में शीघ्र सही निर्णय करना, उचित परामर्श देना तथा मित्रों एवं राजवर्गी लोगों के बीच बैठकर ऊँचे स्तर का हास्य विनोद एवं मीठी चुटकी लेने मे श्री जयमल्लजी की अच्छी ख्याति थी। उनकी कविताओं तथा सस्कारों में उनके मधुर तथा तीखे हास्य का पुट उनके विनोदी स्वभाव का परिचायक है। उनके स्वभाव में मधुरता एवं निश्छलता थी, इस कारण उनका मित्र परिवार काफी विस्तृत था। व्यापारिक दक्षता के कारण २०-२१ वर्ष की उम्र में ही लक्ष्मी उनकी चरण-चेली बन गई थी।

श्री जयमल्ल जी के स्वभाव में प्रारम से ही एक प्रकार की निस्पृहता तथा विषयविमुखता का भाव था। फिर भी उस विरक्ति को कोई निश्चित मार्ग न मिलने के कारण वह बीज रूप मे ही मानस-भूमि में दबी रही। गृहस्थ जीवन की विधि-व्यवहार के अनुसार २२ वर्ष की आयु मे लक्ष्मी देवी नामकी एक सुकुमार ओसवाल कन्या के साथ आपका पाणिग्रहण हुआ। लक्ष्मीदेवी रीवां निवासी श्री शिवकरण जी मूंथा की पुत्री थी। सुन्दरता

के साथ-साथ शालीनता, विनम्रता एवं पतिभक्ति में भी लक्ष्मी वास्तव में 'लक्ष्मी' जैसी ही थी।

वैराग्य उद्बोधन

विवाह के बाद पत्नी पुनः पिता के घर जाती है, और गौना लेकर कुछ समय बाद वापस आती है। श्री जयमल्ल जी का विवाह हो चुका था। गौना अभी होना बाकी था। इसी बीच वे एक दिन व्यापार के लिए मेड़ता आये। कार्तिक पूर्णिमा का दिन था। आचार्य श्री भूधर जी म० का चातुर्मास मेड़ता में था। अब चातुर्मास समाप्त होने जा रहा था इस कारण सभी लोग इस दिन व्यापार बंद कर आचार्य श्री जी का प्रवचन सुनने गये हुए थे। श्री जयमल्ल जी ने बाजार बन्द होने का कारण पूछा तो मालूम हुआ आचार्य श्री भूधरजी का ओजस्वी प्रवचन हो रहा है। श्री जयमल्लजी के अन्तःकरण में धार्मिक रुझान था, पर वह कभी अपनी परितृप्ति के लिए इधर उधर भटका नहीं। आज सहसा उनके अन्तःकरण में एक खिंचाव पैदा हुआ। एक प्रेरणा जगी और व्यापार की चिंता छोड़कर वे भी धर्मस्थान की ओर चल पड़े।

धर्मवीर सुदर्शन



धर्म परिषद् जमी हुई थी। आचार्य श्री भूधर जी म० का अमृत-वर्षी प्रवचन जनता के हृदयों को उच्छ्वसित कर रहा था। ब्रह्मचर्य की दृढ़ता और महत्ता पर प्रकाश डालते हुए आचार्य श्री सुदर्शन सेठ की रोमहर्षक कथा पर विवेचन कर रहे थे।

सेठ सुदर्शन की कथा मुक्त कंठ महाराज !
ललित मनोरंजक कहे सुन रहो सभा समाज।

—पूज्यगुणमाला

सुदर्शन सेठ चम्पानगरी का एक संभ्रान्त कुलीन श्रीमन्त था। लक्ष्मी के साथ-साथ शारीरिक सुन्दरता भी प्रकृति ने उसे मुक्त हाथों दी थी। धर्म और सदाचार का तो वह अवतार माना जाता था। उसके ललाट एवं आँखों पर ब्रह्मचर्य का ओज जैसे टपक रहा था। सुदर्शन के सौन्दर्य, चरित्र एवं स्वभाव की प्रतिमूर्ति जैसी ही उसकी पत्नी थी मनोरमा। सुदर्शन एवं मनोरमा के शील, स्वभाव, सौन्दर्य एव चतुरता की कई कहानियाँ नगर में कही जाती थी। सुदर्शन की प्रामाणिकता,

चरित्रनिष्ठा एवं व्यवहारदक्षता के कारण राजा दधिवाहन ने उसे नगर सेठ का पद दिया था।

सुदर्शन का एक अत्यन्त विश्वस्त मित्र था पुरोहित कपिल। कपिल की पत्नी सुदर्शन के आकर्षक रूप एवं तेजस्वी पौरुष पर मन-ही-मन मुग्ध हो रही थी। उसके मन में सेठ सुदर्शन के प्रति वैषयिक भाव जगने लगा। सुदर्शन उससे अपरिचित था। कपिला ने बीमारी का छद्म करके एक दिन अकेले सुदर्शन को अपने शयनागार में बुला लिया। ऊपर पहुँचते ही दासी ने जब द्वार बन्द किए तो सुदर्शन का हृदय धड़क उठा। वस्त्र से ढके बीमार मित्र के पास जैसे ही सुदर्शन जाके बैठा तो देखा, मित्र के स्थान पर यह तो मित्र की पत्नी छद्म करके सोई है। उसके चेहरे पर काम की व्याकुलता, विषय की आतुरता छटपटा रही है। उसकी आँखों में बेशर्मी के साथ प्रणय-मूढ़ता छाई हुई है। सुदर्शन जाल में फंसे हरिण की भांति आकुलता पूर्वक इधर-उधर देखने लगा। उसके साथ मित्रता के नाम पर धोखा, बहुत बड़ा धोखा हुआ। एक विषयाकुल नारी उसके सच्चरित्र की अनन्त मर्यादा को लूटने का दुस्साहस कर रही है। पुरुष द्वारा नारी के सतीत्व हरण की घटनाएँ

प्रसिद्ध है, पर एक नारी, पुरुष के शील को लूटने के लिए इस प्रकार छल-छद्म खेल सकती है, सुदर्शन को कभी कल्पना नहीं थी। कपिला विषयोन्माद मे पागल हो चुकी थी, उसने सुदर्शन को हर तरह से फिसलाने का प्रयत्न किया। पर सुदर्शन नही डिगा। अन्त में बेशर्म कपिला ने अपने मादक रूप एवं सौन्दर्य का नग्न प्रदर्शन कर सुदर्शन के पुरुषत्व को चचल करना चाहा, पर सुदर्शन ने आँखे मीचली। उसका हृदय विषय-वासना से नही, किन्तु व्रत-रक्षा के लिए काँप उठा। धूर्तनारी को समझाने का कोई उपाय नही देखकर सुदर्शन ने धीमे से कहा—"सुन्दरी! तुम्हारा हाव-भाव प्रदर्शन किसी भी पुरुष को चचल बना सकता है, पर मुझे क्या चंचल करेगा, मुझमें तो पुरुषत्व ही नही है। मुझ जैसे नपुंसक को अपने शयनागार में बुलाकर तुझे पछतावा होगा, सुन्दरी, तुमने धोखा खाया है।"

सुदर्शन के उत्तर से कपिला का पानी उतर गया। "हाथ भी वाल्या और मोरण भी नही खाया।" कपिला ने हाथ मलते हुए सुदर्शन को विदा किया। वह अपनी मूर्खता पर पछताने लगी, सुदर्शन ने समय की सूझ से अपने शील की रक्षा कर ली।

एक दिन सुदर्शन की सुन्दरता पर राजा दधिवाहन की महारानी अभया मुग्ध हो उठी। उसने सुदर्शन को अपने जाल में फांसने के लिए अनेकों षड्यन्त्र रचे। सुदर्शन चूँकि एकबार एक नारी से धोखा खा चुका था, इसलिए वह किसी भी प्रलोभन, दुष्चक्र आदि में नहीं फंसा। किंतु और कुछ उपाय नहीं लगा तो रानी की दासी एक दिन पौषध में बैठे सुदर्शन को ही बांध कर महलों मे ले आई। कामाकुल विवेकभ्रष्ट रानी के हाव-भाव, सौन्दर्यप्रदर्शन आदि से सुदर्शन जब अपने ध्यान से नही डिगा, तो रानी ने उसे बड़े-बड़े प्रलोभन दिए। प्रलोभनों के मायाजाल का भी सुदर्शन पर कोई असर नही हुआ। रानी ने उसे मृत्यु का भय दिखाया, राजा के द्वारा उसके संपूर्ण कुल का नाश करवाने की धमकी दी। पर दृढव्रती सुदर्शन का एक रोम भी चलित नहीं हुआ। सुदर्शन की इस शीलदृढ़ता पर मनुष्य क्या, स्वयं देवता भी चकित थे। रानी हर प्रकार के प्रयत्नो से हार खा गई, धर्मवीर सुदर्शन काम-विलास पूर्ण शयनागार में रति रूपा अर्धनग्न रानी के हाव-भाव के मोहप्रद दृश्यो के समक्ष भी आत्मा की अनन्त गहराई में डूबा रहा, उसने आँख खोलकर एक पलक भी

ऊँची नही की। ठोकर खाकर फुफकारने वाली नागिन की भांति रोष खाकर आखिर रानी ने शोर किया—सुदर्शन पर शील हरण करने का आरोप लगाया गया। पहरेदारों ने ध्यानस्थ सुदर्शन को पकड़कर राजा के दधिवाहन के समक्ष उपस्थित किया—"यह ढोंगी, राजमहलों में कुत्ते की तरह घुस आया और महारानी के साथ बलात्कार की दुश्चेष्टाएँ करने लगा।" सुदर्शन फिर भी मौन रहा, राजा के बार-बार पूछने पर भी उसने कोई प्रतिवाद नही किया। वह मौन लिए अपने ध्यान में निश्चल बैठा रहा। क्रुद्ध राजा ने सुदर्शन को अपराधी घोषित कर शूली की सजा सुना दी। और हाहाकार करते हजारों लोगों के बीच दृढ़व्रती सुदर्शन को पकड़ कर जैसे ही शूली पर बिठाने का प्रयत्न किया कि, शूली स्वर्ण सिंहासन मे बदल गई। देवताओं ने आकाश से फूल वर्षा कर सुदर्शन का जय-जयकार किया। शूली का सिंहासन देख चमत्कृत जनता ने धर्मवीर सुदर्शन की जय बोली, और राजा दधिवाहन भी आकर चरणों में क्षमा मांगने लगा।

यह है शील का चमत्कार! व्रत-दृढता का गौरव! सुदर्शन की यह अमर यशोगाथा, ब्रह्मचर्य का साक्षात्

चमत्कार सुनकर श्री जयमल्ल जी का हृदय ब्रह्मचर्य की साधना के लिए अभिभूत होगया। उनके मन में एक वज्र सकल्प जगा। लगा जैसे सुदर्शन का विस्मृत वीरत्व अंग-ड़ाई भर कर हुंकार उठा—और मन-ही-मन उन्होने संकल्प किया—मैं भी आजीवन कठोर ब्रह्मचर्य की साधना करूंगा। आचार्य श्री भूधर जी के समक्ष उन्होंने अपना वज्रसकल्प घोषित किया। लोग दातों तले अंगुली दबाए जयमल्ल जी का यह सकल्प सुन रहे थे। यह भरापूरा यौवन, सपन्न घर, रूपवती रमणी और यौवन की उच्छल उमगे ! अभी-अभी शादी हुई है, गौना भी नही हुआ, और एक ही प्रवचन सुनकर ब्रह्मचर्य की भीष्म प्रतिज्ञा ले रहे हैं ! लोगो की प्रतिकूल बातों का जयमल्ल जी के दृढव्रती मन पर कोई असर नही हुआ। वे अपने सकल्प के धनी थे, अपने निश्चय पर वज्र से कठोर और चट्टान से अडिग थे। माता की ममता, पिता की स्नेहिल पुकार और नवपरिणीता वधू का उफनता हुआ मादक प्यार, उन्हें अपने ध्येय से नहीं डिगा सके। कोई उन्हें रोक नहीं सका। नया संसार बसाने को चलने वाला जोडा—ससार त्याग कर कठोर श्रमण जीवन की अनन्त उड़ान पर चल पड़ा। श्री जय-

मल्ल जी ने वि० स० १७८७[1] मृगसरवदी दोज को मेड़ता मे आचार्य श्री भूधर जी महाराज के चरणो में अपने सकल्पो को मूर्त रूप देते हुए भागवती दीक्षा ग्रहण की। श्री जयमल्ल जी की नवपरिणीता पत्नी भी कब पीछे रहने वाली थी। वह भी वीररमणी थी, नारी का गौरवपूर्ण इतिहास उसके हृदय को उत्प्रेरित कर रहा था। नेमिनाथ के पीछे राजुल ने अमर प्रीत की राह पकड़ी थी। जबूकुमार के साथ-साथ आठ सुन्दरियों ने अपार ऐश्वर्य और भोग सामग्रियो को ठुकरा कर दीक्षा ग्रहण की थी, तो अब श्री जयमल्लजी के पीछे लक्ष्मी बाई कब अपने गौरव से हटने वाली थी! उन्होने भी गुरुवर के समक्ष आग्रह पूर्ण प्रार्थना की, और वह भी सयम मार्ग की पथिका बनकर उसी असिधारा व्रत पर चल पड़ी।

पूज्य श्री जयमल्लजी के अपूर्व वैराग्य की यह घटना सहसा नेमिकुमार के करुणासिक्त वैराग्य की और जंबूकुमार की अपूर्व विरक्ति की कहानियां सजीव रूप में उपस्थित कर रही है।



१. कुछ १७८८ मे दीक्षा मानते हैं

कठोर तप : साधना ॰ | ५

आगमों में श्रमणों के कठोर तपश्चरण का वर्णन करते हुए उनके कुछ विशेषण दिये गये हैं—"उग्गतवे, घोरतवे, दित्ततवे"'वे श्रमण बड़ा उग्रतप करने वाले थे, घोर तप करने वाले थे। तप: साधना से उनके जीवन मे एक दिव्य तेज, अद्‌भुत दीप्ति प्रकट हो गई। वे तप से दीप्त थे।

पूज्य श्रीजयमरलजी म० की साधना का वर्णन पढ़ते हुए आगमो की यह रोमाचक सुदीर्घ शब्दावली स्मृतियों में उभर आती है। वे अपने सकल्पों में वज्र से कठोर अपनी धुन के पक्के और विचारो में अंगद के पाव की तरह अडिग थे। दीक्षा लेने के बाद उनके समक्ष एक ही लक्ष्य था आत्मकल्याण। तप:साधना द्वारा आत्म शुद्धि, मनोनिग्रह और सततजागरूक रहकर आत्म-चिन्तन ! स्वाध्याय और आगम अभ्यास !

श्रमण जीवन की प्रथम सीढ़ी पर चरण रखते ही उन्होंने एकान्तर तप की उग्र आराधना प्रारंभ करदी ! एक दिन उपवास और एक दिन आहार, कुछ दिन में ही मनुष्य को क्षीण एवं दुर्बल बना देता है। किंतु पूज्य श्रीजयमल्लजी का आत्मबल अपराजेय था। वे एक दो वर्ष तक नही, किंतु निरंतर सोलह वर्ष तक इस तपः आराधना मे जुटे रहे।

पूज्य श्री की तपः साधना शुष्क और नीरस नही थी। उसमे ध्यान, स्वाध्याय और अध्ययन की रस धारा सतत प्रवहमान होकर अन्तःकरण को सरस, मधुर बनाती रहती थी। आपकी बुद्धि बड़ी प्रखर और स्मृति बड़ी चिरस्थायी थी। अध्यवसाय बहुत दृढ थे। चित्त की एकाग्रता अद्‌भुत थी। इन कारणों से आपकी स्मरणशक्ति में बड़ी तीव्रता आ गई और बहुत ही जल्दी किसी ग्रन्थ को कंठस्थ कर लेते। दीक्षा लेने के कुछ समय बाद ही आपने 'श्रमण सूत्र' कठस्थ कर लिया। इसी कारण एक सप्ताह बाद ही आपकी बड़ी दीक्षा हो गई। आप जब भी याद करने बैठते, खूब जमकर करते। एक बार आप निरयावलिया सूत्र के पांचों सूत्र लेकर बैठे और एक पहर के भीतर ही पांचों सूत्र याद कर लिए।

पांच सूत्र सो एक पहर में
पढ़कर कंठ करिया रे।

—गुणमाला

धुन के धनी



जैसा मैंने लिखा है—आपके अध्यवसाय बहुत दृढ थे। दूर-दूर तक आपकी ख्याति थी जयमल्लजी जैसा धुन का धनी कोई दूसरा नहीं है। जो संकल्प कर लिया उसके लिए—कार्यं वा साधयामि देहं वा पातयामि—कार्य पूरा करूँगा, भले ही शरीर क्यों न छूट जाय—इतना वज्र संकल्प लेते। एकबार की बात है, सं० १८०४ आषाढ़ सुदि १० शुक्रवार को आपके गुरुवर श्री भूधर जी म० का स्वर्गवास हो गया। आपके हृदय के कण-कण में उनके प्रति अटूट आस्था थी, दृढ श्रद्धा थी। आपने गुरु के महाप्रयाण अवसर पर विशेष संकल्प करने का निश्चय किया और तुरंत ही यह भीष्म प्रतिज्ञा ली कि—'आज से जीवन पर्यन्त कभी भी लेट कर नींद नहीं लूँगा।" सामान्यतः देखने में इस प्रतिज्ञा की भीष्मता इतनी प्रतीत नहीं होती, किन्तु जब व्यवहार में आता है

तो पता चलता है, लेटकर नींद न लेना कितना कठिन और उग्र तपश्चरण है। वह भी एक दो चार दिन नहीं, किंतु सतत ५० वर्ष तक आपने इस व्रत को निभाया। इसीलिए तो शास्त्रों में मुनि के लिए—'मुणिणो सया जागरंति'—विशेषण दिया गया है। साधक सतत जागरूक रहता है। उसकी वृत्तियां अन्तरमुखी होती हैं। वह जीवन में पद-पद पर—भारंड पक्खी व चरेऽप्पमत्ते—भारड पक्षी की तरह सतत सावधान और अप्रमत्त होकर विचरता है। हां, तो पूज्य श्री की यह सतत जागरूक वृत्ति उनके जीवन की अन्तर्मुखता में मुख्य सहायक बनी। उनकी वृत्तियां, उनकी चिन्तनधारा अन्तःप्रवाही बन गई और जीवन में एक परम अन्तर्दृष्टि जग पड़ी। इस सतत जागरूकता का प्रभाव उनके साधक जीवन पर तो पड़ा ही, किंतु उनके कवि मानस पर तो इस जागरूकता ने बड़ा विचित्र प्रभाव दिखाया। चिन्तनशीलता के साथ सूक्ष्म-निरीक्षण और विविधकल्पना सृष्टि से आपके काव्यों में एक नया चमत्कार पैदा हो गया। इस प्रकार पूज्य श्रीजयमल्लजी के जीवन में तप. साधना की कठोर चर्या ने उसे तपाया,तो मेधा की प्रखरता,बुद्धि की तीक्ष्णता एवं व्युत्पन्नता ने उसमें अद्‌भुत निखार भर दिया। ●

धर्म प्रचार | ६

पूज्य श्री जयमल्लजी का जीवन सर्वतोमुखी साधना से युक्त था। वे आत्म-संयम में जितने कठोर थे, उतने ही पर-दुःखकातर थे। लोगों को कष्ट एवं अज्ञान से पीड़ित देख कर उनका मन पसीज उठता और अन्तःकरण पुकार उठता—

कामये दुःखतप्तानां प्राणिनामार्तिनाशनम्।
कामयेऽज्ञानग्रस्तानां प्राणिनां ज्ञानबोधनम्॥

बस, मैं और कुछ नहीं चाहता, दुःखी प्राणियों की पीड़ाओं का नाश करू और अज्ञानग्रस्तजनों के अन्तःकरण में ज्ञान का प्रकाश भर दूँ।

लोकहित की इस पवित्र भावना से पूज्य श्री ने काफी दूर-दूर तक धर्म प्रचार हेतु विहार किया और राजा महाराजाओं से लेकर सामान्यजन तक के साथ संपर्क बनाया।

बीकानेर उन दिनो यतियों का क्षेत्र कहलाता था। वहाँ यतियों का इतना दबदबा था कि कोई साधु उस नगर मे प्रवेश करने का भी साहस नहीं करता। आपने बीकानेर को 'सर' करने का निश्चय किया।

पूज्य श्री बीकानेर पधारे तो, वहाँ के जतियो ने आपको नगर में प्रवेश नही करने दिया। उन्होने धमकियां दिखाई—'यह हमारा क्षेत्र है, इस में किसी अन्य को घुसने की शक्ति नही, यदि कोई भाग्यवश आ गया तो वह टिक नही सकता।' यतियों का विरोध, और दुर्भावपूर्ण व्यवहार के कारण पूज्य श्री बीकानेर नगर के बाहर मरघटों की छत्रियो में ठहरे। वास्तव में सच्चा साधक जहां भी रहे, वही उसकी उपासना भूमि बन जाती है, उसके जगल में भी मगल होता है। आपने मरघटों की छत्रियो मे ही अपना डेरा डाल दिया और ध्यान स्वाध्याय करने लगे। वहाँ जोधपुर के दीवान साहब की पुत्री श्रीमती रामकुँवर बाई ने पूज्य श्री के पधारने का सवाद सुना। उनके पुत्र बीकानेर के दीवान थे। रामकुँवर बाई ने पूज्य श्री को मरघट की छत्रियों में ठहरा देखा तो उनका हृदय रोमांचित हो उठा। गुरुभक्ति के वेग में विह्वल हो उन्होंने प्रतिज्ञा ली—

"जब तक गुरुमहाराज नगर में नहीं पधारेंगे, मैं भोजन नहीं करूँगी।" रामकुंवर बाई के पुत्र दीवान थे, और बड़े मातृभक्त! वे माता के साथ ही भोजन करते थे। आज जब माता को उपवास किए देखा तो उन्होंने भोजन का आग्रह किया। बहुत आग्रह के बाद माता जी ने कहा—

पूज्य हमारा पुर के बाहर,
बिन अन जल छे भूखा।

हमारे गुरुदेव जब आहार पानी के बिना नगर के बाहर भूखे बैठे हैं, तो मैं भोजन कैसे कर सकती हूँ।" गुरु भोजन न करे तो भक्त भोजन कैसे करें? और माँ भोजन न करे तो मातृभक्त पुत्र भोजन कैसे करे?

दीवान साहब बिना भोजन किए महाराजा श्री गजसिंह जी (१८०२-१८४४) के पास पहुंचे। पूज्य श्री के आगमन व उनके व्यक्तित्व का परिचय देकर जतियों के विरोध की बात कही तो बीकानेर नरेश ने जतियों को डांट दिखाते हुए एक आज्ञापत्र प्रसारित किया, और अपने राजवर्गीयों को स्वागत के लिए भेजा और बड़ी धूम-धाम से हजारों पुरवासियों के झुण्ड के साथ पूज्यश्री

ने बीकानेर में पदार्पण किया। रामकुँवर बाई की भक्ति का यह आदर्श नमूना था, पूज्य श्री को नगर में पधारकर अपने हाथ से भिक्षा दी और फिर भोजन किया।[१]

बीकानेर में सैंकडो व्यक्तियों ने पूज्यश्री से धर्म श्रद्धा ग्रहण की। स्वयं बीकानेर नरेश भी कई बार आपके संपर्क में आये और आपसे तत्त्व चर्चा कर बहुत प्रभावित हुए। इसप्रकार बीकानेर में स्थानकवासी सम्प्रदाय का पहला झण्डा पूज्य श्री ने फहराया और हजारों लोगों को श्रद्धालु बनाया।

जोधपुर नरेश महाराज अभयसिंह जी (१७८१-१८१६) पूज्य श्री जयमल्ल जी तथा उनके गुरुश्री भूधर जी म० से बहुत प्रभावित थे। एकबार जब पूज्य श्री पीपाड़ विराज रहे थे तो दरबार की आपके दर्शनों की इच्छा हुई। दरबार ने अपने दीवान रतनसिंह भंडारी को भेजकर पूज्य श्री से जोधपुर पधारने की प्रार्थना की। जब आप जोधपुर पधारे तो महाराज दर्शन को तो आये ही, किन्तु साथ में अपनी

---

१ रामकुँवर शुद्ध आहार बहिराया
पछे जीमी है दाता भक्तो की —पूज्य गुणमाला पृ०३०

रानियों और परिवारजनों को भी शाही ठाठ से लेकर आये। सबने पूज्य श्री से उपदेश सुना और बड़े प्रभावित हुए। जोधपुर नरेश के हृदय में आपके प्रति अत्यन्त श्रद्धा थी। जब आप सं० १७६१ में देहली पधारे तो वहाँ पर भी जोधपुर नरेश ने अपने साथ मित्र राजाओं के साथ आपके दर्शन किए और उपदेश सुनाने का आग्रह किया। उपदेश सुनकर जयपुर नरेश भी, जो जोधपुर नरेश के साथ थे इतने प्रभावित हुए कि उन्होंने शाहजादे को भी यह शुभ सम्वाद सुनाया। शाहजादे के मन में भी पूज्य श्री के दर्शनों की ललक उठी, वे जयपुर नरेश के साथ दर्शन करने आये और हिंसा अहिंसा सम्बन्धी अनेक प्रश्न किये। अहिंसा का उपदेश सुनकर शाहजादे ने निरपराध प्राणी के वध की प्रतिज्ञा भी ग्रहण की।

पूज्य श्री की वाणी में वह चुम्बकीय आकर्षण था कि जो सुनता, उसका हृदय आपकी ओर खिंच जाता। आपका उपदेश सीधा हृदय को स्पर्श करता। साधारण जनता से लेकर राजवर्गीयों तथा राजाओं ने आपके उपदेश सुने, उससे प्रभावित हुये, और शिकार, मांस भक्षण आदि की प्रतिज्ञाएँ ली। अनेक महाराजा तो पूज्य श्री के बड़े भक्त और अनुयायी बन गये थे।

पोकरण के ठाकुर देवीसिंह जी चम्पावत ने भी पूज्यश्री का उपदेश सुनकर शिकार का त्याग किया था। देवगढ के ठाकुर जशवंतराय जी और देलवाडा के राव रघु जी पूज्य श्री के प्रति अत्यन्त श्रद्धा रखते थे। इस प्रकार जहाँ भी पूज्य श्री का विहार हुआ, वहाँ सामान्य जनता से लेकर ऊँचे से ऊँचे अधिकारी और शासक पूज्य श्री के सपर्क में आये, उनसे प्रभावित हुए और धर्म के अनुरागी बने। यह सब पूज्य श्री की निश्छल साधना और उग्रतपश्चरण का चमत्कार ही मानना चाहिये। उस युग के अनेक मुनियों, कवियों एव आचार्यों में पूज्य श्री जयमल्लजी का नाम विशेष श्रद्धा एव आदर के साथ लिया जाता था। उनका वर्चस्व इतना प्रभावपूर्ण था कि आप वि० स० १८०५ अक्षय तृतीया को जोधपुर मे जब आचार्य पद पर आसीन हुये थे, तो उसके कुछ दिन बाद ही आपकी आज्ञा पर आपके संप्रदाय का नाम करण "जय गच्छ" होगया।

आपने पचास वर्ष तक आचार्य पद को शोभित किया और गाव-गाव नगर-नगर में धर्म की ज्योति प्रज्वलित की। जीवन के अन्तिम वर्षों में आपका स्वास्थ्य दुर्बल हो जाने से रोगाक्रांत हो गया और नागोर मे स्थिरवास

हो गये। नागौर में १३ वर्ष तक आप स्थिरवास रहे। वि० सं० १८५३ की वैसाख सुदी चतुर्दशी (नृसिंह चतुर्दशी) को आपने ३१ दिन के संथारे में समाधिपूर्वक इस देह का त्याग किया।

इस प्रकार वह महान् विभूति जो यौवन की तपती दुपहरी में साधना के कठोर मार्ग पर कदम बढ़ाकर चली थी, वह उसी श्रद्धा निष्ठा और अडिग मनोबल के साथ जीवन की सांध्य वेला तक निरंतर जागरूक और उत्साह पूर्वक अपने लक्ष्य को निकट करती हुई एक दिन अपनी साधना की पूर्णाहुति कर इस नश्वर देह को त्याग चुकी।



७

स्पष्टवक्ता : उदार हृदय

पूज्य श्री जयमल्लजी म० स्वभाव से जितने सरल और स्पष्ट थे, उनकी वाणी उतनी ही तेजस्वी तथा निर्भीक थी। वे समय पर उपदेश और हित शिक्षा देने में कभी नहीं चूकते थे।

एकबार पूज्य श्री विहार करते हुए अपनी जन्मभूमि लांबिया पधारे। वहां उनके बचपन के मित्र कुशलोजी नाम के एक गृहस्थ रहते थे। पूज्य श्री ने लोगों से—कुशलो जी के सम्बन्ध में पूछा— "वह क्यों नहीं आया?" लोगों ने कहा—"महाराज! कुशलो जी अब वह नहीं रहा! वह तो लक्ष्मीनन्दन बन गया।" पूज्य श्री बचपन की मैत्री को ध्यान में रख कर स्वयं कुशलो जी के घर गए। कहा—"कुशलो जी! संत गांव में आये हैं, कभी व्याख्यान वाणी सुना करो!"

कुशलो जी ने बड़ी लापरवाही से कहा—"महाराज ! व्याख्यान वाणी सुनने अभी कहां फुर्सत है ! आप तो साधु बन गये, मांग कर खाना है, हमें तो कमाना पड़ता है। बेटे-बेटियों की शादी करनी है।"

काफी वरसो बाद एकबार पुन. पूज्य श्री लांबिया पधारे। अभी भी कुशलो जी नही आये। लोगो से पूछा, तो बताया अब बिचारा क्या धर्म सुनेगा ? बड़ी बुरी दशा हो रही है। बेटे अलग हो गये है और कुशलोजी बूढा खंखर हो गया है। गायो के बाडे मे अकेला पडा रहता है।"

'पूज्य श्री का हृदय करुणा से छलक उठा। वे चले कुशलो जी से मिलने। देखा, तो लोगो ने जो बताया उससे भी बुरी दशा थी। पास मे आकर बोले—"कुशलो जी ! अब तो तुम्हें फुर्सत है ? जवानी में तो धर्म सुनने को फुर्सत नही थी, पर अब....?"

कुशलो जी की आंखो से टप-टप गंगा जमना बहने लग गई। पूज्य श्री ने कुशलो जी को लक्ष्य करके एक उक्ति कही—

छोरां ने लेगी डाकणियां छोरयां ने लेग्या भूत।
जयमल्ल कहे कुसलेश ने तू रह्यो ऊत को ऊत ॥

पूज्य श्री सत्य के अन्वेषक थे। उन्हें असत्य, दिखावे और झूठे आडंबर से बड़ी घृणा थी। जो लोग केवल भक्ति और भावना की झूठी बातें बनाते, पूज्य श्री बड़ी निर्भीकता के साथ उनकी इस आडंबरप्रिय वृत्ति पर चोट करते। उन्हें दिखावा नहीं, सहज सरल भक्ति पसंद थी।

एक बार पूज्य श्री जोधपुर पधारे। वहाँ किले के नीचे एक ओसवाल बाई का घर था। वह बाई बड़ी बातूनी और आडंबर प्रिय थी। पूज्य श्री के पास आकर बड़ा विनय दिखाती और कहती—"महाराज! कभी कभी मुझ अभागिन के घर पर भी संतों को भेजने की कृपा करो! पास पड़ौस में गोचरी करते हैं और मेरा घर छोड़ कर चले जाते हैं।"

पूज्य श्री के मन में अमीर गरीब का समान आदर था। उन्होंने संतों से अमुक बाई के घर गोचरी जाने का आदेश दिया। संतों ने कहा—"कभी उसका घर बंद मिलता है, कभी कच्चे पानी से हाथ भीगे रखती है, कभी लिलोती (हरियाली) का संघट्टा किए रहती है।"

पूज्य श्री ने फिर भी सन्तों को जाने का निर्देश किया। बुढ़ियाबाई की शिकायत कम नहीं हुई।

बराबर वह संतों को ही कोसती, "मुझ गरीबनी के घर पर कोई आहार लेने भी नहीं आते।"

एक दिन पूज्य श्री स्वयं उस के घर की ओर आहार लेने को चल पड़े कि देखें गलती संतो की है या उस बाई की। संयोगवश उस दिन बाई का घर तो खुला था, पर वह घट्टी पीसने बैठ गई थी। आचार्य श्री को देखते ही उठी—"अहो! धन्यभाग्य है, आज पूजी महाराज ने मेरे घर में पगलिये कर दिये।"

आचार्य श्री ने देखा—भक्ति तो इतनी दिखाती है और गोचरी के समय पर घट्टी पीसने बैठी है। उन्होंने एक दोहा कहा—

नितकी भावे भावना, नित की तोड़ै लट्टी।
जयमल आयो वेहरवा, बाई मांडी घट्टी॥



उदार हृदय



पूज्य श्री जयमल्ल जी म० का हृदय बहुत उदार था। वे अपने से बड़ों का जितना सम्मान करते थे, छोटों को भी उतना ही आदर देते, उनकी भावनाओं का सम्मान करते और सदा आगे बढ़ने की प्रेरणा देते। कभी कभी उनके जीवन मे ऐसे प्रसग भी आये, जब

उनके पास कोई एक अमुक वस्तु है, और वह किसी दूसरे मुनि व श्रमणी को लेने की उत्सुकता जाग पड़ी, तो पूज्यश्री उसकी भावनाओं को समझते, उसे हतोत्साहित नहीं होने देते, बल्कि उसमें निर्माण की प्रेरणा जगाकर अपनी प्रिय वस्तु भी उसे दे डालते। उनकी यह उदारता कभी-कभी सम्राट हर्ष का स्मरण करा देती है जो गरीबों के बीच दान देता हुआ अपने पहनने के वस्त्र तक उतार कर दे डालता था।

पूज्य श्री एकबार राजस्थान से देहली (वि० १७६१) पधारे। वहाँ आपकी विद्वत्ता एवं चारित्रनिष्ठा की ख्याति तो पहले ही फैल चुकी थी। पंजाब व देहली के अनेक सन्त सतियां आपके दर्शन करने को आते। एक बार कुछ साध्वियां आपके दर्शनार्थ आई। पूज्य श्री का प्रवचन सुना। प्रवचन में आप भगवती सूत्र फरमाते थे। साध्वियों ने प्रार्थना की—"आपकी प्रवचन शैली तो बहुत ही आकर्षक और मनोमोहिनी है। हम आपका हस्तलिखित शास्त्र देखना चाहती है, जिससे कि आप प्रवचन करते हैं।"

पूज्य श्री ने अपने पास का हस्तलिखित भगवती

सूत्र साध्वियों को देखने के लिए दे दिया। कुछ दिन बाद वह वापस लेकर आई। पूज्य श्री ने सहज भाव से पूछा—'क्यों पसन्द आया ?'

साध्वियां सकुचाती हुई बोली—"महाराज! है तो बहुत सुन्दर! पर हमें पसन्द आने से क्या लाभ है, हमारे भाग्य में ऐसा सुन्दर शास्त्र कहाँ, हमें कौन दें ?"

पूज्य श्री ने साध्वियों की सुकुमार भावनाएँ देखी, शास्त्र के प्रति इतना अनुराग! और न मिलने पर मन में इस प्रकार की हीनता! उन्होंने तुरन्त अपना संपूर्ण भगवती सूत्र निकाल कर साध्वियों को सौंपते हुए कहा—"यह ले जाइए! आप पढ़िए और इसे संभाल कर रखिए।"

साध्वियों की आँखों में हर्ष के आंसू छलछला उठे। धन्य है यह उदारता! जिस युग में एक हस्तलिखित शास्त्र प्राप्त करने के लिए साधु सन्त सैकड़ों मील की पदयात्रा का कष्ट उठाकर चले जाते थे, उस युग में साध्वियों की भावना देखकर अपना सुन्दर हस्तलिखित शास्त्र यों दे देना वास्तव में ही पूज्य श्री के उदार हृदय की एक विरल झलक है।



कवि हृदय की अनुभूतियां

८

एक कहावत है—कवि बनते नही, जन्मते हैं। काव्य-कला पाना एक और चीज है और कवि हृदय पाना कुछ और है। पूज्य श्री जयमल्लजी कवि हृदय थे, वे जन्मजात कवि थे, इसलिए उनकी कविताओं में सहजता मार्मिकता, और निश्छल-उपदेश-प्रवणता के दर्शन पद-पद पर किये जा सकते हैं। काव्य-शास्त्र की दृष्टि से उनकी कविताओं की कसौटी भले ही प्रथम स्तर पर न जाये, किन्तु कवि हृदय की उन्मुक्त अनुभूतियों की दृष्टि से वे किसी प्रकार कम नही है।[1]

पूज्य श्री की कविताओ का विषय मुख्यतः नीति, उपदेश एव अध्यात्म रहा है। रीति काल में जन्म लेकर

---

१. काव्यशास्त्र की दृष्टि से पूज्य श्री की कविताओं के विश्लेषण के लिए देखें 'मुनि श्री हजारीमल स्मृति ग्रन्थ', डा० नरेन्द्र भानावत का लेख।

भी वे रीति कालीन कवियो को बधी बधाई परिपाटी पर नही चले। रीतिकाल की स्वच्छन्द शृङ्गार प्रधान धारा को उन्होने भक्ति एवं वैराग्य की प्रशान्त पवित्र प्रेमधारा की ओर मोड़ा। इसीलिए उनके काव्यो के नायक कोई शृङ्गार प्रिय राजा एव रानियां न होकर बीतराग तीर्थंकर, शील ज्योति सतियां, त्यागमूर्ति श्रावक श्राविकाएँ ही रही है। पूज्य श्री ने तीर्थंकरों के सरस चरित्रो का आलेखन किया है, सतियो की लोमहर्षक तितिक्षा एवं शीलप्रधान कहानियो को गीतिकामय गुम्फित की है। अनेक उपदेशप्रद सुबोध पद्य, एवं प्रेरक दोहों की रचना की है। उनके स्वभाव मे एक सहज विनोदीपन था, इसलिए समय-समय पर वे ऐसी तीखी उक्तियां भी कह देते थे, जो मधुमक्खी के डक की तरह तीखी होते हुये भी रसमयता में किसी भी प्रकार कम नही होती।

पूज्य श्री की कविताओ का एक संकलन कुछ वर्ष पूर्व मैंने 'जयवाणी' नाम से किया था। तब तक ७१ छोटी बड़ी रचनाएं मुझे प्राप्त हुई थी, उसके बाद कुछ भडारों में और भी सुन्दर-ललित रचनाए मिली हैं।

कवि हृदय की अनुभूतियां | ८

एक कहावत है—कवि बनते नहीं, जन्मते है । काव्य-कला पाना एक और चीज है और कवि हृदय पाना कुछ और है। पूज्य श्री जयमल्लजी कवि हृदय थे, वे जन्मजात कवि थे, इसलिए उनकी कविताओ में सहजता मार्मिकता, और निश्छल-उपदेश-प्रवणता के दर्शन पद-पद पर किये जा सकते है। काव्य-शास्त्र की दृष्टि से उनकी कविताओ की कसौटी भले ही प्रथम स्तर पर न जाये, किन्तु कवि हृदय की उन्मुक्त अनुभूतियों की दृष्टि से वे किसी प्रकार कम नही है ।[1]

पूज्य श्री की कविताओ का विषय मुख्यत: नीति, उपदेश एवं अध्यात्म रहा है । रीति काल में जन्म लेकर

१. काव्यशास्त्र की दृष्टि से पूज्य श्री की कविताओं के विश्लेषण के लिए देखें 'मुनि श्री हजारीमल स्मृति ग्रन्थ', डा० नरेन्द्र भनावत का लेख ·

भी वे रीति कालीन कवियो को बधो बधाई परिपाटी पर नही चले। रीतिकाल की स्वच्छन्द शृङ्गार प्रधान धारा को उन्होने भक्ति एवं वैराग्य की प्रशान्त पवित्र प्रेमधारा की ओर मोड़ा। इसीलिए उनके काव्यो के नायक कोई शृङ्गार प्रिय राजा एव रानियां न होकर वीतराग तीर्थंकर, शील ज्योति सतियां, त्यागमूर्ति श्रावक श्राविकाएँ ही रही है। पूज्य श्री ने तीर्थंकरों के सरस चरित्रों का आलेखन किया है, सतियों की लोमहर्षक तितिक्षा एवं शीलप्रधान कहानियो को गीतिकामय गुम्फित की है। अनेक उपदेशप्रद सुबोध पद्य, एवं प्रेरक दोहों की रचना की है। उनके स्वभाव में एक सहज विनोदीपन था, इसलिए समय-समय पर वे ऐसी तीखी उक्तियां भी कह देते थे, जो मधुमक्खी के डक की तरह तीखी होते हुये भी रसमयता मे किसी भी प्रकार कम नही होती।

पूज्य श्री की कविताओं का एक सकलन कुछ वर्ष पूर्व मैंने 'जयवाणी' नाम से किया था। तब तक ७१ छोटी वडी रचनाएं मुझे प्राप्त हुई थी, उसके बाद कुछ भंडारो में और भी सुन्दर-ललित रचनाए मिली हैं।

जो परिमाण एव काव्य शैली की दृष्टि से काफी महत्व पूर्ण है ।

पूज्य श्री की कविताओं की एक सरस झांकी के रूप में कुछ पंक्तियाँ यहाँ उद्धृत की जाती है। विशेष रसास्वादन के पिपासु 'मुनि श्री हजारीमल स्मृति ग्रन्थ' में डा० मनावत जी का लेख देखें, तथा जयवाणी का अवगाहन करें ।

कवि ने एक स्थान पर 'आध्यात्मिक दीवाली' मनाने की एक सुन्दर कविता प्रस्तुत की है । दिवाली के दिन किये जाने वाले बही-खाते की पूजा के स्थान पर धर्म-पूजा, मकान की स्वच्छता के स्थान पर व्रत-शुद्धि तथा पारिवारिक स्नेह के स्थान पर धर्म-स्नेह को महत्व देते हुए लिखा है--

पर्व दिवाली ने दिने, पूजे बही लेखण ने दोत ।
ज्यूं तू धर्म ने पूजले दीपे अधिकी जोत ।।
पर्व दीवाली जाण ने उजवाले हवेली ने हाट ।
इम तू व्रत उजवालले वंधे पुनांरा ठाट ।।
धन धान त्रिया बालक सजन व्हाला लागे तोय ।
जैसो नेह कर धर्म स्यूं ज्यो मुगति तणा सुख होय ।।

  

संसार की अनित्यता का बोध देते हुए कवि ने कहा है—

पर देशी परदेश में, किण सूं करे रे सनेह।
आयां कागद उठ चलें, आधो गिर्णे नहीं मेह॥

★ ★

क्रोध की अनर्थकारिता का बोध देखिये—कितनी मार्मिकता के साथ कराया गया है—

तामस तपियो नर इसो, आख मिरच जिम आंजी रे।
क्रोध विणासे तप सहो, दूध विणासे कांजी रे।

★ ★

शरीर की नश्वरता का उपदेश देखिए—कितनी स्पष्ट भाषा में किया गया है—

ले जाई लक्कड में दीधो, हुवो घर रो वैरी रे।
घास-फूस छाणा देई ने, फूक दियो जिन हूंसी रे॥

★ ★

साधु जीवन को एक युद्ध क्षेत्र का रूपक देकर उसे योद्धा के रूप में प्रस्तुत करते हुये कवि ने कहा है—

साधु जो ऊठ्या सूरमा रे, ज्ञान घोड़े असवार।
कर्म कटक दल जूंझिया रे विलंब न कीन्ही लगार।

★ ★

कवि ने लोगों को अज्ञानग्रस्त होकर मंदिर-मंदिर में जय भगवान को पुकारते देखा, घी-तेल के दीप जलाकर उसकी आरती उतारते देखा तो उनकी मोह-मूढ़ता पर तरस खाकर उसने प्रभु पूजा का सही मार्ग बताया—

काया रूप करो देहरो, ज्ञानरूपी जिनदेव।
जस महिमा शख झालरी, करो सेवा नितमेव।
धीरज मन करो धूपणों, तप अगरज खेव।
श्रद्धा पुष्प चढ़ायने, इम पूजो जिनदेव॥
दया रूपी दिवलो करो, संवेग रूपणी बाट।
समगत ज्योत उजवालले मिथ्या अंधारो जाय फाट
संवररूपी करो ढांकणो ज्ञान रूपियो तेल।
आठों ही कर्म परजाल नें दो रे अंधारो ठेल॥

★ ★

इस प्रकार संत कवि जयमल्लजी म० की कविताओं में पार्थिव सौन्दर्य के स्थान पर मानव आत्मा के अन्त: सौन्दर्य का उद्बोधन किया गया है। जीवन के आध्यात्मिक उत्कर्ष एवं ज्ञान प्रधान निर्गुण उपासना को उद्दीपन दिया गया है। उनके काव्य रस की मधुर धारा से शताब्दियों तक जन-जीवन अनुप्राणित होता रहेगा। ★

●

पूज्य आचार्य श्री जयमल्ल जी : घटनाओं का तिथि क्रम

●

जन्म	वि० स० १७६५ भादवा सुदी १३	लांबिया
दीक्षा	वि० स० १७८७ मृगसर वदी २	मेड़ता
आचार्यपद	वि० सं० १८०५ अक्षय तृतीया	जोधपुर
स्वर्गवास	वि० सं० १८५३ वैशाख शुक्ला चतुर्दशी	नागौर

● चातुर्मास सूची ●

सोजत :	स० १७८९, १७९६, १८०३, १८०५ १८१९, १८३२
जालोर	स० १७९०
दिल्ली	१७९१
मेड़ता :	स० १७९२, १७९८, १८०२, १८०४, १८०७, १८२४, १८२७
जोधपुर :	स० १७९३, १७९५, १७९७, १८००, १८०१, १८१०, १८१६, १८२०, १८२६, १८२९, १८३४, १८३६
किशनगढ़ :	सं० १७९९, १८१५, १८२१, १८३०, १८३८
बोरावड़:	सं० १८०८
जेतारण	सं० १८०९
पीपाड़ :	स० १८११, १८३५

भीलवाड़ा : सं० १८१२

उदयपुर : सं० १८१३

अमर रायपुर : सं० १८१४

बीकानेर : सं० १८१७, १८२३

जयपुर : सं० १८१८

शाहपुरा : सं० १८३१, १८३६

पाली : सं० १८३३, १८३७

नागौर : सं० १७६४, १८०६, १८२२, १८२५, १८२८

१८४० से १८५२ (स्थिरवास के करण)



आचार्य परम्परा | ९

स्थानकवासी परम्परा का आज जो सुन्दर भव्य महल खड़ा हुआ है, उसके आधारभूत तत्वों पर जब दृष्टि केन्द्रित होती है तो सहसा इतिहास की तीन महान् विभूतियों के दिव्यदर्शन से तन-मन पुलकित हो उठता है। लोंकाशाह के क्रांतिकारी विचारों में कुछ और संशोधन करके श्रीधर्मदासजी, म० श्री लवजी ऋषि एवं श्री धर्मसिंह जी म० इन तीनों महानपुरुषों ने श्रमण परम्परा को नया मोड़ दिया। शुद्ध आचार विचार को परिपुष्ट कर उसके उत्कर्ष को शिखर पर पहुँचाया।

श्री धर्मदास जी म० के पट्टधर श्री धन्ना जी म० हुए और उनके पट्ट पर आचार्य श्री भूधर जी आसीन हुए। इन आचार्यों ने स्थानकवासी परम्परा के नवांकुरित कल्पवृक्ष का संरक्षण, सवर्धन कर उसे आगे से आगे योग्य मालियों के हाथों में सौंपा। आचार्य श्री भूधरजी

के शिष्यों में आचार्य श्री रघुनाथ जी, आचार्य श्री जयमल्ल जी तथा आचार्य श्री कुशलो जी का नाम सदैव स्मरणीय है। ये आचार्य बड़े प्रभाविक, प्रतापी एवं कुशल प्रशासक हुए। आगम की भाषा में—सुयसंपन्ने वि शीलसंपन्ने वि—वे श्रुत एवं शील की सम्पदा से सपन्न थे। उनकी ज्ञानाराधना जितनी ऊँची थी, चारित्र साधना उतनी ही निर्मल एवं कठोर थी।

आचार्य श्रीरघुनाथ जी म० के एक शिष्य थे श्री भीखण जी। श्री भीखण जी स्वामी सैद्धान्तिक मतभेद के कारण आचार्य श्रीरघुनाथ जी की संप्रदाय से अलग हो गए। तत्कालीन साहित्य व वार्ताओं से पता चलता है कि आचार्य श्रीरघुनाथ जी एक सिद्धान्तवादी आचार्य थे, इसी कारण गुरु-शिष्य के मतभेद में कोई समन्वय मार्ग नहीं निकल सका। पूज्य श्री जयमल्ल जी सिद्धान्तों के साथ व्यावहारिकता का मेल अधिक करना चाहते थे। इसीलिए अंतिम क्षण तक पूज्य श्री जयमल्ल जी यह चाहते रहे कि श्री भीखण जी गुरु से अलग जाकर कोई नया सप्रदाय खडा न करें। संगठन व प्रेम बना रहे और इस परम्परा में नयी नयी प्रतिभाएँ अपना चमत्कार दिखाती रहें। किंतु वैसा न हो सका। अलग

होने के बाद भी श्री भीखण जी पूज्य श्री जयमल्लजी म० का काफी आदर व स्नेह करते थे। इतिहास व परम्परा की अनेक करवटों के बाद आज भी पूज्य श्री जयमल्लजी की संप्रदाय अपेक्षा कृत अन्य संप्रदायों के, पारस्परिक मेलजोल, स्नेह एवं सद्भाव मे अपनी विशेषता रखती है। आचार्य श्री रघुनाथ जी की परम्परा मे आज मरुधरकेशरी प्रवर्तक श्री मिश्रीमल जी म० जैसे समर्थ प्रभावशाली संत हैं, जो गुरुदेव की कीर्ति पताका को चारों ओर फहरा रहे हैं।

आचार्य श्रीकुशलो जी म० की परपरा मे आज आचार्य श्री हस्तीमल जी म० उनकी ज्ञान एवं चारित्रिक समृद्धि को अक्षुण्ण बनाये हुए स्थानकवासी परम्परा के गौरव को बढा रहे है।

हम प्रस्तुत में पूज्य श्री जयमल्ल जी म० की आचार्य परम्परा का विवरण दे रहे हैं अतः अन्य विस्तार में जाना प्रासांगिक नहीं होगा।

आचार्य श्री रायचन्द्र जी



आचार्य श्री जयमल्ल जी म० ने अपने आध्यात्मिक

उत्तराधिकारी के रूप में सं० १८४६ मे श्री रायचन्द्र जी को युवाचार्य घोषित किया ।

आचार्य श्री रायचन्द्र जी का जन्म वि० स० १७९६ आसोज शुक्ला एकादशी को जोधपुर में हुआ । आपके पिता श्री विजयराज जी धाड़ीवाल और माता नन्दादेवी थी !

पूज्य श्री जयमल्ल जी की भांति इनके वैराग्योद्गम की कहानी भी बड़ी अद्भुत है । आपके पाणिग्रहण की तैयारी चल रही थी । प्रथा के अनुसार विवाह से पूर्व पास-पड़ोस वाले दुल्हे को अपने घर भोजन (बिंदोला) के लिए निमन्त्रित करते थे । आप पड़ोसी के घर में भोजन करने गये और वहां विवाह के मगल गीत गाये जा रहे थे । भोजन करते-करते आपके मन में वैराग्य जग पड़ा । बस, फिर क्या था, विवाह को तैयारी धरी रही और आपने अपने दृढ़ निश्चय के अनुसार स्वामी श्री गोरधन दास जी के पास वि० सं० १८१४ आसाढ़ सुदी एकादशी को भागवती दीक्षा ग्रहण की ।

आपका अध्ययन क्षेत्र विस्तृत था । दर्शन-काव्य आदि ग्रन्थों का अध्ययन किया । राजस्थानी भाषा मे

आपने अनेक ग्रन्थों का प्रणयन किया। वि० स० १८६८ माघ कृष्ण चतुर्दशी को आपका स्वर्गवास हुआ।

आचार्य श्री आसकरण जी



आपका जन्म वि० स० १८१२ मृगसिर वदी २ को तिंवरी (तिमरपुर, राजस्थान) के रूपचन्द जी बोथरा के घर हुआ। बचपन से ही आपके मन में वैराग्य के सस्कार प्रबल थे। सोलह वर्ष की आयु में आपके वाग्दान (सगाई) की तैयारी हो चुकी थी। परन्तु आपने बीच ही में उस सम्बन्ध के कच्चे धागों को वैराग्य की प्रबल पवन से तोड़ डाला और आचार्य श्री जयमल्ल जी के चरणों में वि० सं० १८३० वैशाख वदी ५ को मुनि दीक्षा धारण की। आचार्य श्री रायचन्द्र जी ने आपको १८५७ आषाढ़ वदी ५ को युवाचार्य पद प्रदान किया व उनके स्वर्गारोहण के पश्चात् १८६८ माघ पूर्णिमा के दिन सम्प्रदाय का नेतृत्व सभाला। आचार्य श्री रायचन्द्र जी की भांति आप भी एक कुशल कवि व गीतिकार थे। स्तुति एव सज्झाय विषयक अनेक रचनाएँ आपकी आज प्राप्त हो रही है, जिन पर उनके प्राणवान कृतित्व का झलक

मिलती है। वि० सं० १८८२ कार्तिक कृष्णा पंचमी को ७० वर्ष की आयु में आपका स्वर्गारोहण हुआ।

आचार्य श्री सबलदास जी



आचार्य श्री आसकरण जी ने अपने संघीय दायित्व का भार श्री सबलदास जी म० को वि० सं० १८८१ चैत्री पूनम को सौंप दिया था। और आचार्य श्री के स्वर्गवास के ३ मास बाद माघ शुक्ला त्रयोदशी (जोधपुर) में आपका आचार्य पद समारोह मनाया गया।

आपका जन्म वि० सं० १८५८ भाद्रपद शुक्ला १२ को पोकरण नगर में हुआ। आपकी माता श्री सुन्दरबाई और पिता आनन्दराम जी लूणिया थे। आचार्य श्री रामचन्द्र जी म० के कर कमलों द्वारा वि० सं० १८४२ में आपने मुनि दीक्षा धारण की थी।

आपका स्वभाव बड़ा शांत, मधुर एवं विनोदी था। आपकी कविताओं में छन्दशास्त्रीय ज्ञान की विशेष झलक मिलती है। वि० सं० १९०३ वैशाख शुक्ला नवमी सोजतनगर में आपका स्वर्गवास हुआ।

आचार्य श्री हीराचन्द्र जी



आचार्य श्री सबलदास जी ने युवाचार्यपद की परंपरा उठादी थी। अतः उनके स्वर्गवास के पश्चात् १६०३ को आषाढ शुक्ला नवमी को जोधपुर में उनके पद पर श्री हीराचन्द्र जी महाराज पदारूढ हुए।

आपका जन्म सं० १८५४ भाद्रपद शुक्ला पंचमी को राजस्थान के पिराईगांव मे श्री नरसिंह जी कांकरिया के घर हुआ। आपकी माता श्री गुमानादेवी थी। दस वर्ष की आयु मे ही आपके मन मे वैराग्य के अंकुर फूट पड़े। शुभ संस्कारों की प्रबलता के कारण शीघ्र ही आपको दीक्षा का अवसर प्राप्त होगया। सं० १८६४ आश्विन कृष्णा तृतीया को सोजतनगर में आपको आचार्य श्री भासकरण जी द्वारा दीक्षा संस्कार प्राप्त हुआ। कविता तो जैसे जयगच्छ की विरासत ही थी। आप बहुत छोटी वय में ही कविताएँ करने लगे। आपकी रचनाओं में शब्द सौन्दय, छन्दोनियम आदि की विशेष पुट है। १६२० के फाल्गुन कृष्ण ७ को आप स्वर्गवासी हुए।

आचार्य श्री कस्तूरचन्द जी

●

आपका जन्म सं० १८९८ को फाल्गुन कृष्णा ३ को विसलपुर मे हुआ। माता कुन्दनादे और पिता नरसिंह जी थे। १९०७ में नौ वर्ष की आयु मे ही आपने आचार्य श्री हीराचन्द जी के पास दीक्षा धारण की। १९२० में आपको संघ द्वारा आचार्य पद प्रदान किया गया। आपकी रचनाएँ अभी कोई उपलब्ध नहीं हुई हैं।

आचार्य श्री भीकमचन्द्र जी

●

आचार्य श्री भीकमचन्द्रजी म० सं० १९६०, भाद्रपद शुक्ला पूर्णिमा को जोधपुर मे श्री जयगच्छ के सातवें आचार्य पद पर आसीन हुए।

आपकी माताजी श्री जीवनदे और पिता जी रत्नचन्द जी बरलोटा थे। बाल्यकाल से ही आपके हृदय में वैराग्य की भावनाएँ हिलोरें लेने लगी थी। आपने आचार्य श्री कस्तूरचन्द जी के पास दीक्षा धारण की। आप पाच ही वर्ष तक आचार्य पद पर रहे। सं० १९६५ की वैशाख कृष्ण पचमी को आपका स्वर्गवास हो गया।

आचार्य श्री कानमल जी

●

आप आचार्य श्री भीकमचन्द्रजी के सुयोग्य एव प्रतिभाशाली शिष्य थे। स० १६६५ ज्येष्ठ शुक्ला द्वादशी को आपके सुदृढ हाथो मे जयगच्छ का आध्यात्मिक नेतृत्व आया।

आपका जन्म वि० स० १६४८ की माघ पूर्णिमा को ग्रवा गांव में हुआ। माता तोजादे, पिता अगरराज जी पारख थे। लघुवय मे ही आपने १६६२ कार्तिक सुदी अष्टमी को जोधपुर (महामदिर) में आचार्य श्री भीकम चन्द जी के चरणों में दीक्षा प्राप्त की। आपकी विशेष योग्यता का परिचय इसी बात से मिलता है कि तीन वर्ष की दीक्षा पर्याय मे ही आप आचार्य पद पर प्रतिष्ठित हुए। आपकी चारित्रिक निष्ठा एव अनुशासन दक्षता की विशेष ख्याति थी।

आचार्य पद और विसर्जन

●

यह उल्लेखनीय है कि आचार्य श्री जयमल्लजी म० की सम्प्रदाय समय-समय पर चारित्र सपन्न विद्वान, कवि

तथा प्रवक्ता मुनियों को जन्म देने वाली रत्नगर्भा सम्प्रदाय रही है। इस परम्परा में अनेक तेजस्वी, तपस्वी तथा विद्वान संत हुए है जिन्होंने जिनशासन की सर्वतोमुखी उन्नति में अपना महत्त्वपूर्ण योग दिया है।

वि० सं० १९८५ में आचार्य श्री कानमल जी का स्वर्गवास होने के तीन वर्ष पश्चात् पाली में छह सम्प्रदायों का एक मुनि सम्मेलन आयोजित हुआ। उसमें संप्रदाय की सुव्यवस्था के लिए मुनि श्री हजारीमलजी महाराज को प्रवर्तक एवं मुनि श्री चौथमल जी महाराज को मन्त्रीपद पर नियुक्त किया गया। इस व्यवस्था के मध्य कुछ विचारशील सज्जनों ने यह सोचा कि जब संप्रदाय में विद्वान् एवं योग्य मुनिराज विद्यमान है तो आचार्यपद रिक्त क्यों रखा जाये। सम्प्रदाय की सुव्यवस्था एवं प्रतिष्ठा की दृष्टि से आचार्य पद के लिए प्रयत्न चालू हुए और तदनुसार मुनि श्री मिश्रीमल जी महाराज 'मधुकर' को यह पद सुशोभित करने के लिए आग्रह किया जाने लगा। आपके स्वभाव में एक विचित्र निस्पृहता, फक्कड़ता तथा प्रसिद्धि एवं लोक अर्चा से दूर रह कर सिद्धि लाभ करने की उग्र

भावना है। संस्कृत-प्राकृत आदि भाषा तथा व्याकरण, दर्शन, न्याय आदि का उच्चस्तरीय ज्ञान प्राप्त करके भी आपकी वृत्तियों में वह विनम्रता एवं सहजता है कि पद का आकर्षण आपको कभी स्पर्श भी नहीं कर सका। सम्प्रदाय के वरिष्ठजनों के आग्रह के कारण आपको वि० सं० २००४ नागौर में भारी समारोह के बीच आचार्य पद ग्रहण अवश्य किया, पर आपका अन्तःकरण फिर भी एकांत साधना एवं शांति के लिए लालायित बना रहा। आचार्य पद समारोह के साथ ही आपको 'आचार्य जसवतमल जी म०' के नाम से अभिहित किया गया। कुछ समय पश्चात् ही आपने अपनी शांतिप्रिय साधनाशील प्रकृति के कारण आचार्य पद पर नहीं रहने का निर्णय कर लिया। सन्तों एवं श्रावकों की आग्रह भरी प्रार्थनाएँ आपकी आत्मा की आवाज को दबा नहीं सकी। तत्पश्चात् पुनः प्रवर्तक पद की परम्परा चालू हुई और वि० सं० २००९ में सादड़ी के अखिल भारतीय स्था० मुनियों के वृहद् साधुसम्मेलन में जब अखिल भारतीय संगठन के लिए आह्वान हुआ तो इस सम्प्रदाय ने श्रमण-संघ में अपना विलय करके एकता के लिए महान त्याग का आदर्श प्रस्तुत किया। —सम्पादक

जयगच्छ के विशिष्ट संत | १०

विचार एवं आचार की दृष्टि से स्थानकवासी परम्परा एक धर्मक्रांति की उपज है। इस धर्म परम्परा ने विचार के क्षेत्र में उदारता, सहिष्णुता एवं समन्वय वृत्ति के साथ-साथ स्वधर्मनिष्ठा एवं धर्म पर बलिदान होने की प्रेरणाएँ दी हैं, तो आचार के क्षेत्र में पवित्रता, निश्छलता, सद्भाव एवं चारित्रिक विकास का द्वार उन्मुक्त किया है। स्थानकवासी परम्परा में आचार्य श्री जयमल्ल जी महाराज की परम्परा अपने गौरवमय आदर्शों के प्रति सदा जागरूक एवं गतिशील रही है। जयगच्छ के संतों ने आचार निष्ठा के साथ-साथ सरस्वती के ज्ञानमंदिर में श्रद्धा और भक्ति के पद्मपुष्पों की मालाएं अत्यन्त विनीत भाव से समर्पित की है। भक्ति सद्भाव एवं काव्य कला—जैसे उन संतों की पैतृक विरासत रही है, साथ ही हस्त-लेखन की सुघड़ता एवं

दक्षता में वे संत अपनी प्राचीन संस्कृति के संरक्षक रूप से सतत जागरूक रहे हैं। इस परम्परा में अनेक विद्वान्, प्रवक्ता, कवि, प्रचारक एवं लोकप्रिय संतों का प्रादुर्भाव हुआ है, उन सब का परिचय काफी विस्तार चाहता है। हम यहाँ पर संक्षेप में कुछ विशिष्ट संतों का परिचय दे रहे हैं।

१—स्वामी श्री फकीरचंदजी महाराज

एक उक्ति है—

मानवतन दुर्लभ है जग में, विद्वत्ता उसमें दुर्लभ।
विज्ञ मनुज यदि संत बने तो, है संयोग महादुर्लभ॥

श्री फकीरचंद जी म० इस युग के एक महादुर्लभ संयोग ही थे। विद्वत्ता और साधुता का दिव्यमिलन उनके जीवन का श्रेष्ठ चमत्कार था।

आप श्री बुधमल जी महाराज के एकमात्र विद्वान् शिष्य थे। आपका जन्म जोधपुर के निकटवर्ती विसलपुर ग्राम में हुआ। आपकी माता श्री कुन्दना जी एवं पिता श्री नरसिंहदास जी थे। इसी गच्छ के यशस्वी आचार्य श्री कस्तूरचन्द जी आपके छोटे भाई थे। जैन

आगमो के तलस्पर्शी अध्ययन के साथ-साथ आपने व्याकरण, न्याय, तर्क आदि विविध विषयो पर अधिकारपूर्ण पांडित्य प्राप्त किया था। आपकी प्रतिभा बहुत तीव्र और तर्क कुशल थी। अन्य सम्प्रदायो के संत भी आपके पास अध्ययन करने आते थे। श्वेताम्बर संप्रदाय के प्रसिद्ध आचार्य श्री विजयानंदसूरि ने (आत्माराम जी) सम्प्रदाय परिवर्तन के पश्चात् भी आपकी विद्वत्ता से आकृष्ट हो आपके पास व्याकरण आदि का अध्ययन किया था। सौराष्ट्र के प्रसिद्ध संत तपस्वी श्री माणक चन्द्र जी म० आपके निकट रह कर दो वर्ष तक व्याकरण आदि का अध्ययन करते रहे।

तेरापथ सम्प्रदाय के केन्द्र लाडनू में आपने वर्षावास कर स्थानकवासी विचार परम्परा की वैजयंती फहराई थी। आप अपने युग के असाधारण प्रतिभाशाली एव ओजस्वी प्रवक्ता सन थे।

२ —स्वामी श्री शोभाचन्द जी म०

ज्ञान, चारित्र एव तप की सतत आराधना करने वाले श्री शोभाचन्द जी म० का जन्म १९१७ में हुआ। आपका स्वभाव अत्यन्त नम्र व जिज्ञासा बडी बलवती

थी। साम्प्रदायिक दीवारों को तोड़कर परस्पर सौजन्य एवं सौहार्दपूर्ण व्यवहार बढ़ाने में आपकी विशेषता उल्लेखनीय है। आपकी प्रेरणाओं से श्री चोथमल जी म०, श्री नरसिंह जी म०, श्री मूलमुनि जी म० ने दीक्षा ग्रहण की थी।

३—स्वामी श्री हरकचन्द जी म०

भगवान महावीर ने अपनी धर्म देशना में कहा है—'अप्पं भासिज्ज संजए' संयत साधक कम बोले, और जो बोले वह-'हियमाणुलोमियं'—हितकारी व अनुकूल वचन बोले। स्वामी श्री हरकचन्द जी म० का जीवन इन आदर्शों का सजीव चित्र था। इनका हृदय बालक-सा सरल और भक्त-सा सहज श्रद्धा से ओत-प्रोत था, इसीलिए उन्हें हजारों-हजार भक्तो की सहज श्रद्धा प्राप्त हुई।

उनकी वाणी में एक सहज सिद्धि थी। जो वचन सहजभाव से निकल गया वह अक्षरशः सत्य ही सिद्ध होता। उनके स्वर्गवास को आज लगभग एक शताब्दी पूरी होने जा रही है फिर भी उनके स्वर्गवास स्थान पर लोग उनका नाम लेकर अपनी काम्य प्रार्थनाएं करते हैं और प्रायः सिद्धि भी देखी जाती है।

आपका जन्म सं० १८८२ कातिक शुक्ला ६ को सेटों की रीयां मे हुआ। पूज्य श्री कुशालचन्द्र जो म० के चरणो मे आपने सं० १८६१ मे दीक्षा ग्रहण की। और सं० १६३६ कुचामण में स्वर्गवास हुआ।

४--स्वामी श्री जोरावरमल जी महाराज

श्रमण का एक उज्ज्वल आदर्श है --

"सम मणइ तेण सो समणो होई"

जो सब के प्रति समभाव रखता है, वह श्रमण कहलाता है। श्री जोरावरमल जी महाराज के जीवन मे श्रमणत्व का यह आदर्श साकार हुआ था। विद्वत्ता मे जिस प्रकार आपकी ख्याति थी, उससे भी अधिक समता, एवं उदारता मे आप एक आदर्श मुनि माने जाते थे। वि० सं० १६६५ मे ही आपने कुचेरा-डेह-नागौर आदि क्षेत्रो में हरिजनो के कल्याण के लिये अथक प्रयत्न किये थे। आप एक सुधारवादी साहसिक संत थे।

आप श्री फकीरचन्द्र जी म० के प्रतिभाशाली शिष्य थे। वि० सं० १६३६ अक्षय तृतीया के दिन सिहु (जोधपुर) की वीर भूमि में आपका जन्म हुआ। आपके माता-पिता क्रमशः श्रीमगनावाई एव श्री रिद्धकरणजी थे।

जयगच्छीय परंपरा के इस गौरवशाली सत की दीक्षा भूमि, जय गच्छ के गौरवशाली नगर नागौर में श्री फकीरचन्द जी म० के द्वारा वि म० १९४४ अक्षय तृतीया को सपन्न हुई।

आपने सस्कृत व्याकरण, आगम, टीका, चूर्णि, छन्दः शास्त्र, ज्योतिष आदि का गहन अध्ययन किया।

भोजन पकने पर रस रूप मे परिणत होता है, और अध्ययन पक कर चिन्तन रूप मे व्यक्त होता है। आपके अध्ययन की परिपक्वता के फलस्वरूप-चिन्तन की गभीरता, विचारो की उदारता एवं समन्वय वृत्ति ने जन्म लिया। सम्प्रदायों मे पारस्परिक प्रेम, सद्भाव एव समन्वय के लिये किये गये प्रयत्नों मे आपका नाम सदा गौरव के साथ लिया जायेगा।

आपके शिष्यों में स्वामी श्री हजारीमल जी म० का नाम गौरवास्पद है ही। स्वामी श्री ब्रजलाल जी एवं मुझ पर भी आपके ही अनन्य उपकार है जिनकी परिणति रूप में आज हम अपनी परम्परा एवं धर्म की यत्किंचित् सेवा करने में समर्थ बने है। आपका स्वर्गवास सं० १९८६ में सलेखनापूर्वक भु वाल में हुआ।

५—स्वामी श्री हजारीमल जी म०

भिक्षु की परिभाषा करते हुए कहा गया है—

'उवसंते अविहेडए जे स भिक्खू'

जो सदा शांत रहता है, अपने कर्तव्य के प्रति सतत् जागरूक है, वही सच्चा भिक्षु है।

शांति, तितिक्षा, कर्तव्यनिष्ठा एवं सेवा परायणता का बहुविध संयोग एक ही जीवन में देखना हो तो स्वामी श्री हजारीमल जी म० का जीवन दर्शन पढ़ना चाहिए।

आपके जीवन के कण-कण मे करुणा, एवं स्नेह भरा हुआ था। पशुओं, दीन असहायों की सेवा, सहायता के लिए आप प्रवचन में अनेक बार बल देते। आपको आनंदघन, विनयचन्द्र आदि की चौबीसी मधुर स्वर में गाते हुए जब कोई सुनता तो स्वयं भी भक्ति की रसधारा में भाव विभोर होकर बह जाता। श्रमणसंघ के संगठन में आपका अपूर्व योग दान रहा है। संतों की सेवा, आतिथ्य व मधुर व्यवहार में आपकी सुदूर प्रांतों तक में ख्याति थी।

श्री व्रजलालजी म० ने आपके मधुर व्यक्तित्व का निम्न काव्य पंक्तियों में बड़ा ही सुन्दर भावांकन किया है।

मन में थी अति मधुरता सीधा सादा वेश।
समन्वयात्मक आपका, था शाश्वत संदेश ॥
जन-जन के प्रति सहज था, सुहृद सौम्य सद्भाव।
प्राणिमात्र उन्नयन हित, सजग रहा समभाव ॥

आपका जन्म सं० १९४३ डासरिया (मेवाड़) में हुआ। आपके पिता श्री मोतीलाल जी मुणोत व माता श्री नन्दू बाई थी।

११ वर्ष की सुकुमार वय में ही आपने श्री जोरावर मल जी म० के चरणों में सं० १९५५ ज्येष्ठ कृष्णा १० को नागौर में दीक्षा ग्रहण की। सं० २०१८ चैत्र कृष्णा दशमी को नागौर चातुर्मास के लिए जाते हुए नोखा (चांदावतों का) में ही शारीरिक अस्वस्थता के कारण आपका स्वर्गवास हो गया। आपके गुरुभाई श्री व्रजलाल जी म० बड़े ही सेवानिष्ठ, मधुर स्वभाव के सन्त हैं। सेवा को आप साधुता का शृंगार मानते है। आपकी हस्तलिपि बहुत ही सुन्दर तथा सुगठित है। आप एक सुमधुर गायक भी हैं,

थोकड़ों का गंभीर ज्ञान आपकी एक विशेषता है। आपका मधुर स्नेह व वात्सल्य मुझे प्राप्त हुआ और एक लघु गुरु भ्राता का गौरव भी, यह मेरे सौभाग्य का विषय है।

६ स्वामी श्री चौथमलजी म०

कवि, प्रवक्ता, समाज सुधारक और संगठन प्रेमी एक साथ यदि किसी व्यक्तित्व को देखना हो तो स्वामी जी श्री चौथमल जी म० का व्यक्तित्व देखा जा सकता है। आप आगमों के तलस्पर्शी ज्ञाता, निर्भीक व्याख्याता थे। आपकी वाणी बड़ी श्रवण-सुखदायिनी व मनोहारिणी थी। आप आशुकवि तथा संगीत प्रेमी थे। आपके गुरुभाई श्री चांदमल जी म० भी लिपि कला में बड़े कुशल तथा स्वाध्याय प्रेमी संत थे। श्री जीतमल जी म० श्री लालचन्द जी म० आदि आपके निकटतम मुनिराजों में हैं। श्री लालचन्द जी म० अच्छे प्रवक्ता व विद्वान् सन्त है।

आपका जन्म १६४७ आषाढ शुक्ला ३ को पिरोजपुरा (कुचेरा) में हुआ। १६५६ में आपने श्री नथमल जी म० से दीक्षा ग्रहण की। जोधपुर में ११ दिन का संथारा करके आपने समाधि पूर्वक देह त्याग किया।

७ स्वामी श्री रावतमलजी म०

सूत्रकृतांग में एक स्थान पर कहा है—

"भावणा जोग सुद्धप्पा जले णावा व आहिया"

जिस साधक की अन्तरात्मा भावना योग से शुद्ध है वह जल में नौका के समान स्वयं भी तैरता है और दूसरों को भी पार लगाता है।

महास्थविर स्वामी श्री रावतमल जी म० का जीवन सरलता, शुचिता का जीवत प्रतीक है। साधुता का निर्मल रूप उनके जीवन मे झलकता है। तपस्या, स्वाध्याय भजन स्तवन यही आपके जीवन का क्रम है। आपकी प्रवचन शैली बड़ी मधुर व रसमय है। दोहे, कवित्त आदि के माध्यम से प्रवचनों में प्रभावकता के साथ उपदेश प्रधानता भी आ जाती है।

आपका जन्म स० १९४५ में रड़ोद में हुआ। १९६०में आपने श्री मगनलाल जी म० के द्वारा दीक्षा ग्रहण की। आपके शिष्य श्री भैरवमुनि जी बड़े ही सेवाभावी गुरुभक्त सन्त हैं।



क्या ?

कहां ?

*

*